अष्टावक्र गीता

जनक उवाच

1. **कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति।**
वैराग्यं च कथं प्राप्तम् एतद्ब्रूहि मम प्रभो।।

हे प्रभु! ज्ञान प्राप्ति का क्या उपाय है? मेरी मुक्ति किस प्रकार होगी? वैराग्य कैसे मिलेगा? आप हमें कृपा करके बताइएं।

अष्टावक्र उवाच

2. **मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज।**
क्षमार्ज्जवदया तोष सत्यं पीयूषवद् भज।।

हे तात! यदि तुम मुक्ति चाहते हो, तो विषयों को विषके समान जानकर छोड दो। और क्षमा, सरलता, दया, सन्तोष एवं सत्य का अमृत के समान सेवन करो।

3. **न पृथ्वी न जलं नाग्निः न वायुर्द्यौ न वा भवान्।**
एषां साक्षिणमात्मानं चिद्रूपं विद्धि मुक्तये।।

तुम न पृथिवी हो, न जल हो, न अग्नि हो, न वायु हो और न तो आकाश ही हो, मुक्ति के लिए तुम अपने आपको इन सबका साक्षी एवं चित् स्वरूप जानो।

4. **यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।**
अधूनैव सुखी आत्मा बन्धमुक्तो भविष्यति।।

यदि तुम देह को अलग करके अपने चित्स्वरूप आत्मा में पूर्ण्णरूप से स्थित हो जाओ तो इसी समय तुम सुखी, शान्त एवं बन्धनमुक्त हो जाओगे।

5. **न त्वं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी नाक्षगोचरः।**
असंगोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखी भव।।

न तुम ब्राह्मणादि वर्ण हो, न ब्रह्मचारी आदि आश्रमी हो और न तुम दृश्य ही हो। तुम असंग हो, निराकार हो, विश्वसाक्षी हो अतः तुम सुखी हो जाओ।

6. **धर्माऽधर्मौ सुखं दुःखं मानसानि न ते विभौ।**
न कर्ताऽसि न भोक्ताऽसि मुक्त एवासि सर्वदा।।

हे अनन्त स्वरूप! धर्म-अधर्म एवं सुख-दुःख केवल मन से ही सम्बद्ध है, तुम से नहीं। तुम न कर्ता हो और न तो भोक्ता हो। तुम स्वरूतः नित्य मुक्त हो।

7. **एको दृष्टासि सर्वस्य मुक्तप्रायोऽसि सर्वदा।**
अयमेव हि ते बन्धो द्रष्टारं पश्यसीतरम्।।

तुम सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच के एकमात्र दृश्टा एवं सर्वदा-सर्वथा मुक्त ही हो। तुम्हारा बन्धन यही है कि तुम दृष्टा को अपने से पृथक् समझते हो।

8. **अहं कर्तेत्यहंमान महाकृष्णाहिदंशितः।**
नाहं कर्तेति विश्वासामृतं पीत्वा सुखी भव।।

'मैं कर्ता हूं' इस अभिमान रूप महान अजगर ने तुमको डंस लिया है। 'मैं अकर्ता हूं' इस विश्वास रूप अमृत का पान करके सुखी हो जाओं।

9. **एको विशुद्धबोधोऽहम् इति निश्चयवह्निना।**
प्राज्वाल्याज्ञानगहनं वीतशोकः सुखी भव।।

मैं एक विशुद्ध बोधस्वरूप हूं, इस महान निश्चय की अग्नि से अज्ञान का घोर जंगल जलाकर तुम शोक-रहित एवं सुखी हो जाओ।

10. **यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।**
आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखं चर।।

जिस अधिष्ठान आत्मा में रज्जु में सर्प के समान यह सम्पूर्ण विश्व कल्पित होकर भान हो रहा है वह आनन्द–परमानन्द बोधस्वरूप तुम्हीं हो। अतः सुख से विचरण करो।

11. मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।
किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत्।।

जिस चित्तमें 'मैं मुक्त हूं' ऐसा अभिमान है, वह मुक्त है और जिसमें मैं बद्ध हूं' ऐसा अभिमान है वह बद्ध है, यह लौकोक्ति सत्य है कि जैसी मति वैसी गति।

12. आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको मुक्तश्चिदक्रियः।
असंगो निःस्पृहः शान्तो भ्रमात्संसारवानिव।।

आत्मा साक्षी, विभु, पूर्ण, अद्वितीय, मुक्त, चेतन, निष्क्रिय, असंग, निःस्पृह एवं शान्त है वह भ्रम से ही संसारी होने की भ्रान्ति होती है।

13. कूटस्थं बोधमद्वैतमात्मानं परिभावय।
आभासोऽहं भ्रमं मुक्त्वा भावं बाह्यमथान्तरम्।।

'मैं चिदाभास रूप जीव हूं' इस भ्रम को तथा बाह्य और आभ्यन्तर भेदभाव को छोड़कर तुम अपने आपको अद्वितीय बोध–स्वरूप कूटस्थ अनुभव करो।

14. देहाभिमानपाशेन चिरं बद्धोऽसि पुत्रक।
बोधोऽहं ज्ञानखड्गेन तन्निष्कृत्य सुखी भव।।

हे वत्स! तुम चिरकाल से देहाभिमान के फन्दे में फंस रहे हो। 'मैं बोध स्वरूप हूं' इस ज्ञान की तलवार से उसे काटकर सुखी हो जाओ।

15. निःसंगो निष्क्रियोऽसि त्वं स्वप्रकाशो निरंजनः।
अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि।।

तुम असंग, अक्रिय, स्वयंप्रकाश, अतःएव स्वतःशुद्ध हो। तुम्हारा बन्धन तो यही है कि तुम समाधि का अनुष्ठान करते हो।

16. त्वया व्याप्तमिदं विश्वं त्वयि प्रोतं यथार्थतः।
शुद्धबुद्धस्वरूपस्त्वं मागमः क्षुद्रचित्तताम्।।

यह सम्पूर्ण दृश्य–प्रपंच तुम से है तथा तुममें ही ओत प्रोत है। तुम शुद्ध–बुद्ध स्वरूप हा। तुम क्षुब्ध चित्त मत बनो।

17. निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीतलाशयः।
अगाधबुद्धिरक्षुब्धो भव चिन्मात्रवासनः।।

तुम किसीकी अपेक्षा मत करो, विकारी मत हो, दृश्य पदार्थ के लिए चिन्ता मत करो। किसी भी कारण से क्षुब्ध मत हो। एकमात्र चित् स्वरूप में ही निष्ठा रखों।

18. साकारमनृतं विद्धि निराकारं तु निश्चलम्।
एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसम्भवः।।

आकार से सम्बन्ध रखनेवाली वस्तु को मिथ्या समझो। जो आकृति और उसके सम्बन्ध से रहित है, वह अचल है। इस तत्त्व का उपदेश प्राप्त कर लेने पर पुनर्जन्म की सम्भावना मिट जाती है।

19. यथैवादर्शमध्यस्थे रूपेन्तः परितस्तु सः।
तथैवास्मिन् शरीरेऽन्तः परितः परमेश्वरः।।

जैसे दर्पण में दीखनेवाले रूप में बाहर और भीतर एकमात्र दर्पण ही है, वैसे ही इस शरीर के सम्बन्ध में भी है। इसके बाहर भतर भी एकमात्र परमेश्वर है।

20 एवं सर्वगतं व्योम बहिरन्तर्यथा घटे।
नित्यं निरन्तरं ब्रह्म सर्वभूतगण तथा।।

जैसे एक सर्वगत आकाश ही घड़े के भीतर और बाहर स्थित है, वैसे ही देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित, सजातीयादि भेदशून्य परमार्थ सत्य ब्रह्म ही समस्त दृश्य–पदार्थो के बाहर–भीतर स्थित है।